तुलसीदास की दार्षनिक चेतना

मोनिका रानी
एम.टी. 98, भट्टू कलाँ
जिला फतेहाबाद, हरियाणा
पिन 125053,

तुलसीदास राम भक्ति काव्यधारा के प्रसिद्ध भक्त कवि है। इनकी महानता को परिलक्षित करते हुए प्रसिद्ध विद्वान एवं आचार्य रामचन्द्र षुक्ल ने लिखा है :

''यदि कोई पूछे कि जनता के हदय पर सबसे बड़ा, अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है तो उनका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय, भारतीय कंठ, भक्त चूड़ामणि, गोस्वामी तुलसीदास।''[1] वास्तव में तुलसीदास एक महान् भक्त–कवि, विद्वान, लोकनायक, समाज सुधारक और दार्षनिक थे ।

दार्षनिक चेतना

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के द्वारा विभिन्न दर्षनों का पर्याप्त मंथन किया और तत्पष्चात भक्ति–दर्षन की प्रतिष्ठा स्थापित की । उन्होंने वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, आगम–ग्रंथों तथा पुराणों का पर्याप्त अनुषीलन किया । यही कारण है कि इनके भक्ति–दर्षन में सभी दार्षनिक विचारधाराओं का सार देखा जा सकता है। जिस प्रकार ब्रह्मा एक है, लेकिन विभिन्न धर्माचार्यों ने उसका निरूपण अलग–2 प्रकार से किया है, उसी प्रकार तुलसी की दार्षनिक भावना एक ही है, जिसे हम भक्ति–दर्षन कह सकते हैं, परन्तु विद्वानों ने उसे अपने–अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है । लेकिन यदि गहराई से देखा जाए तो उनकी दार्षनिकता में सर्वत्र समन्वयात्मकता झलकती है । इसे समझने के लिए हमें तुलसीदास के ब्रह्म, माया, जीव–जगत, मोक्ष और साधना के बारे में विचारों का अनुषीलन करना होगा ।

1. ब्रह्म सम्बन्धी में अवधारणा :

तुलसी के राम भले ही दषरथ के पुत्र है, लेकिन फिर भी वे परब्रह्म है, यदि एक स्थल पर लक्ष्मण निषाद को समझाते हुए यही सिद्ध करते है, तो दूसरी ओर वाल्मीकि मुनि श्री राम की प्रार्थना करते हुए उनके ब्रह्म रूप की वन्दना करते है। लक्ष्मण निषाद से कहते है :–

''राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा''[2]

2. माया के विषय में अवधारणा :

ब्रह्म सृष्टि का सृजन, पालन तथा संहार, जिस शक्ति से करते है, यह शक्ति माया है । माया के विषय में स्वयं भगवान ने कहा है –

"मम ममाया संभव संसारा, जीव चराचर विविध प्रकार ।"[3]

जब भगवान् सगुण रूप धारण करते है, तो साथ ही माया भी अवतार धारण करती है' । सीता अथवा जनकी ब्रह्मा की माया है । उनकी स्तुति करते हुए तुलसीदास जी इस प्रकार कहते है –

"उद्भव स्थिति संहारकारिणी क्लेषहारिणीम् ।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं राम वल्लभनाम्।।"

3. जीव संबंधी विचार :

गोस्वामी तुलसीदास ने जीव को ईष्वर का अंष माना है। इसलिए जीव ईष्वर के गुणों से युक्त है । "ईष्वर अंष जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।"

इसका अर्थ यह हुआ कि जीव भी सच्चिदानन्द ब्रह्मा की तरह अविनाषी है अर्थात वह सत् चेतन और अमर सुख की राषि होने के कारण आनन्दमय है । इसका मतलब हुआ कि ब्रह्मा और जीव में कोई भेद नहीं है । मानस में कवि लिखता है –

"सो मैं ताहि तोहि नहीं भेदा, वारि वीचि इमि गावहिं वेदा ।"[4]

4. जगत संबंधी विचार :

कवि के अनुसार भगवान् ने स्वयं इस जगत की रचना की है । मानस में देवगण भगवान की स्तुति करते हुए कहते है :

"**जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।"**[5]

लेकिन वाल्मीकि मुनि स्वीकार करते हैं कि माया अथवा जानकी ने ही सृष्टि की रचना की है ।

"श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी ।

जे सृजति जगु पालति हरति रूख पाय कृपानिधान की ।।"

5. मुक्ति संबंधी विचार :–

जहाँ तक मुक्ति और उसके साधनों का प्रष्न है, इसके बारे में विद्वानों ने अलग–अलग विचार व्यक्त किए है। वेदान्त के अनुसार जब जीव अपने स्वरूप को पहचान लेता है, ब्रह्मलीन हो जाता है, तो उसे मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है । सामान्य रूप मुक्ति का अर्थ है– संसार के बंधनों से मुक्त होना, संसार के संकटों से छुटकारा मिलना, अविद्या का विनाष होना, जरा–मरण के कष्टों से छुटकारा मिलना अथवा संसार, संसार रूपी सागर को पार कर जाना । 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' में कवि ने स्वीकार किया है कि जड़–चेतन की मृषा ग्रंथि के खुलने से देह से उत्पन्न विकारों को त्यागकर आत्मानन्द में लीन होना और तुरीयावस्था में स्थित हो जाना ही मुक्ति है, लेकिन सिद्धान्त रूप से वे भक्ति को ही मुक्ति कहते हैं।

उपसंहार :–

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि कविवर तुलसीदास ने सभी दर्षनों से कुछ–न–कुछ प्रेरणा प्राप्त की है और अपनी सारग्रहिणी मनीषा के द्वारा स्वमत का निर्धारण किया है । ब्रह्म का सच्चिदानन्द स्वरूप, उसकी एकरूपता, वेदान्त–वेद्यता, अनिर्वचनीयता, अज्ञेयता, जगत की असत्यता और जीवात्मा की नित्यता आदि का वर्णन उन्होंने षंकर के वेदांत के अनुसार किया है । गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के द्वारा विभिन्न दर्षनों का पर्याप्त मंथन किया और तत्पष्चात् भक्ति–दर्षन की प्रतिष्ठा स्थापित की ।

संदर्भ :

1. रामचन्द्र षुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास
4. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास पृ0 121
5. रामचन्द्र षुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास